महर्षि वाल्मीकि की शिव–उपासना

प्राचीन काल में सुमति नामक एक भृगुवंशी ब्राह्मण थे। उनकी पत्नी कौशिक वंश की कन्या थी। सुमति के एक पुत्र हुआ। जिसका नाम अग्निशर्मा रक्खा गया। वह पिता के बार–बार कहने पर भी वेदाभ्यास में मन नहीं लगाता था। एक बार उसके देश में वर्षा के अभाव में बहुत बड़ा अकाल पड़ा। उस समय बहुत लोग दक्षिण दिशा में चले गये। सुमति भी अपने पुत्र और स्त्री के साथ विदिशा के वन में चले गये और वहाँ आश्रम बना कर रहने लगे। वहाँ अग्निशर्मा का लुटेरों से साथ हो गया; अत: जो भी उस मार्ग से आता, उसे वह पापात्मा मारता और लूट लेता था। उसको अपने ब्राह्मणत्व की स्मृति नहीं रही। वेद का अध्ययन जाता रहा, गोत्र का ध्यान चला गया और वेद–शास्त्रों की सुध भी जाती रही। किसी समय तीर्थयात्रा के प्रसंग से सप्तर्षि उस मार्ग पर आ निकले। अग्निशर्मा ने उन्हें देखकर उनके सभी सामान प्राप्त करने की इच्छा से कहा–'अपने सारे वस्त्र आदि सामान मेरे हवाले कर दो।' उसकी यह बात सुनकर अत्रि बोले–हम तपस्वी हैं और तीर्थयात्रा करने के लिये जा रहे हैं अत: तुम्हें हमें पीड़ा देने का विचार नहीं रखना चाहिये।

उत्तर में अग्निशर्मा ने कहा–मेरे माता–पिता, पुत्र और पत्नी हैं। उन सबका पालन–पोषण मैं ही करता हूँ। इसी लिये मैं आप सबके सामान चाहता हूँ।

अत्रि बोले–तुम अपने पिता से जा कर पूछो तो सही कि 'मैं आप लोगों के लिये पाप करता हूँ, यह पाप किसको लगेगा।'

अग्निशर्मा तुरंत अपने पिता, माता, पत्नी तथा पुत्र के पास जाकर उपर्युक्त सवाल पूछा। उन सब से यह जवाब पाकर कि पाप उसे ही लगेगा, वह सप्तर्षियों के पास लौट आया और उन्हें प्रणाम करके अपने उद्धार का रास्ता पूछा। अग्निशर्मा अत्रिजी का शिष्य बन गया तथा अत्रिजी के उपदेशानुसार वह एक वृक्ष के नीचे ध्यानयोग तथा राममन्त्र के जप में लीन हो गया। ऋषियों के चले जाने पर अग्निशर्मा वहाँ पर तेरह वर्षोंतक ध्यान एवं जपयोग में संलग्न रहा। वह अविचल भाव से बैठा रहा और उसके ऊपर बाँबी(दीमकों द्वारा लायी मिट्टी) जम गयी। तेरह वर्षों के बाद जब वे सप्तर्षि पुन: उसी मार्ग से लौटे तब उन्हें वल्मीक(दीमकों की लाई मिट्टी के ढेर) में से उच्चारित होनेवाली रामनाम की ध्वनि सुनाई पड़ी। सप्तर्षियों ने बाँबी से उन्हें निकाल कर 'वाल्मीकि' नाम से प्रसिद्ध होने का आशीर्वाद दिया।

उन सप्तर्षियों के चले जाने पर वाल्मीकि ने कुशस्थली में आकर महादेवजी की आराधना की और उनसे कवित्वशक्ति पाकर एक मनोहर काव्य की रचना की, जिसे 'रामायण' कहते हैं और जो कथा–साहित्य में सबसे प्रथम माना गया है। तभी से अवन्ति में वाल्मीकेश्वर शिव की ख्याति हुई। जो मनुष्य उनकी उपासना करता है उनको वे कवित्वशक्ति प्रदान करते हैं।

(यह कथा स्कन्दपुराण के आवन्त्यखण्ड के अवन्तीक्षेत्र माहात्म्य नामक उपखण्ड के अन्तर्गत

पायी जाती है।)

वाल्मीकि से संबंधित दूसरी कथा का सूत्र महाभारत में पाया जाता है।

तमसा नदी के तीर पर महर्षि वाल्मीकि का आश्रम था। एक समय यज्ञ में वेद-सम्बन्धी विवाद होने पर अग्निहोत्री मुनियों ने कुपित होकर उन्हें 'ब्रह्महत्या' का शाप दे दिया। जिससे ब्रह्महत्या के पाप में लिप्त होकर उन्होंने बहुत दिनोंतक व्याध का कार्य किया। कुछ काल के पश्चात् वे भक्तों के मनोरथ पूर्ण करनेवाले आशुतोष भगवान् शंकर की शरण में गये और उनकी आराधना से समस्त पापों से शीघ्र ही मुक्त हो गये। त्रिपुरहन्ता भगवान् महेश्वर ने मुनि पर प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया-'जाओ तुम्हारी विमल कीर्ति तीनों लोक में अमर होगी और तुम्हारा महाकाव्य संसार में अद्वितीय तथा आर्दश होगा।' फिर क्या था, वे व्याध से महर्षि वाल्मीकि हो गये। भगवान् शंकर के अन्तर्धान होते ही महर्षि वाल्मीकि को एक अद्‌भुत प्रकार का ज्ञान उत्पन्न हो गया और उन्होंने उस समय शिवभक्त भगवान् श्रीरामचन्द्र का जो यशोगान किया, वह रामायण की कथा के रूप में आज विश्व में भगवद्‌भक्ति की अजस्त्र धारा बहा रहा है।

महाभारत में इस वृत्तांत का वर्णन इस प्रकार हुआ है-

वाल्मीकिश्चाह भगवान् युधिष्ठिरमिदं वचः।
विवादे साग्निमुनिभिर्ब्रह्मघ्नो वै भवानिति।।
उक्तः क्षणेन चाविष्टस्तेनाधर्मेण भारत।
सोऽहमीशानमनघममोघं शरणं गतः।।
मुक्तश्चास्मि ततः पापैस्ततो दुःखविनाशनः।
आह मां त्रिपुरघ्नो वै यशस्तेऽग्र्यं भविष्यति।। (महाभा., अनु. 18/8-10)

(उपर्युक्त कथाएँ गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण के संक्षिप्त स्कंदपुराणांक तथा शिवोपासनांक पर आधारित हैं।)

❀❀❀❀❀❀

दरिद्रोऽपि न दग्धव्यो नग्नः कस्याश्चित्त्यजेन्नरः

(निर्णयसिन्धुः पृ. 1180)

अर्थात्- किसी भी अपत्ति में रहकर और दरिद्र होने पर भी नग्न प्रेत को दग्ध नहीं करना चाहिये।(अर्थात् उसे नवीन वस्त्र से अच्छादित कर जलाना चाहिये।)